प्रथम अध्याय

दिशा-दर्शन

सन्त शब्द एवं काव्य

ब्रह्म सत्यान्वेषी सन्त नामदेव और सन्त कबीर हिन्दी-सन्तकाव्य परम्परा के देदीप्यमान नक्षत्र हैं। नामदेव मूलतः मराठी के कवि होने पर भी उन्होंने हिन्दी को गौरवान्वित किया है । इनके स्वानुभूत दर्शन का आलोक युग युगान्तरों से मानव समाज का पथ प्रदर्शन कर रहा है ।

सन्तों के लक्षण

सन्त शब्द का प्रयोग दीर्घकाल से शान्त, संसार से विरक्त, परमतत्त्वान्वेषक, साधु, महात्मा और भक्त के पर्याय रूप में किया जाता है । स्वयं सन्तों ने सन्त के व्यापक लक्षण बताये हैं ।

सन्त नामदेव ने सर्वभूतों में परमतत्त्व दर्शी, क्रोधवासना विरहित, धनादि को तुच्छ समझनेवाला, क्षमा व शान्ति युक्त मनवाले व्यक्ति को सन्त कहा है।[1] उनके मत में सन्त की छाया,माया, संगति से ही गोविन्द की प्राप्ति होती है ।[2] कबीर के विचार में सन्तोषी, विरक्त व सदा साईं से साक्षात्कार करनेवाला व्यक्ति ही सन्त है ।[3] सन्त परम्परा के गरीबदास के मत में सन्त और साईं एक ही हैं ।[4] सन्तों के इन लक्षणों के अनुसार सभी प्रकार के भक्त सन्त कहलाते हैं पर हिन्दी में यह शब्द निर्गुण ब्रह्मोपासकों के लिए रूढ़ होने का कारण उसकी ऐतिहासिक परम्परा है ।

ऐतिहासिक परम्परा

ऐतिहासिक परम्परा के अनुसार हिन्दी साहित्य में इस सन्त शब्द के

---

1. नामदेव गाथा - महाराष्ट्र शासन प्रत - अभंग- 841
2. सन्त की छाया, सन्त की माया, रहा सुगति मिलि गोविन्द पाया ।
   डा० मिश्र व मोर्दे संपादित- स०ना०हि०प० - पद- 32
3. सन्त न बांधै गाठडी, पेट समाता लेई
   साईं सू सन्मुख रहे, जहाँ मांगे तहाँ देई । क०ग्रं० बेसास कौ अंग सा- 10
4. साईं सरीखे सन्त है ।
   गरीबदास की बानी - पृ० 87

प्रयुक्त होने के पूर्व महाराष्ट्र में वारकरी सन्त ज्ञानदेव, नामदेव, एकनाथ आदि भक्तों के लिए होता था । श्री परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार सन्त शब्द का प्रयोग किसी समय विट्ठल या वारकरी सम्प्रदाय के प्रधान प्रचारक उन सन्तों के लिए होने लगा था जिनकी साधना निर्गुण भक्ति पर आधारित थी[1] वहीं से यह शब्द हिन्दी साहित्य में अपनाया गया ।

"सन्त काव्य" शीर्षक की उपयुक्तता

यह सन्त काव्य परम्परा प्रारम्भ में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा "निर्गुण धारा की ज्ञानाश्रयी शाखा" और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा "निर्गुण भक्ति साहित्य" की संज्ञा से अभिहित की गई । ऐतिहासिक दृष्टि से सन्त शब्द की दीर्घ परम्परा को लक्षित करते हुए डा॰रामकुमार वर्मा[2] व आचार्य परशुराम चतुर्वेदी[3] डा॰गणपतिचन्द्र गुप्त[4] ने "सन्त काव्य" नाम देना उपयुक्त समझा । तब से हिन्दी साहित्य की भक्तिकाल की इस धारा को "सन्त काव्य" की संज्ञा दी जा रही है और इस धारा के कवियों के लिए सन्त शब्द का प्रयोग किया जा रहा है । हिन्दी साहित्य के प्रसंग में सन्त का विकसित नवीनतम अर्थ निर्गुणोपासक है । यद्यपि ब्रह्म सत्यान्वेषी निर्गुण या सगुण भक्त सभी सन्त हैं पर हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने विवेचन सुविधार्थ उनमें भेद किया है । सन्तों के लक्षण व परम्परा की दृष्टि से इन सन्तों के काव्य के लिए यह नाम अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है ।

हिन्दी और मराठी साहित्येतिहासों में सन्त शब्द व काव्य

हिन्दी और मराठी साहित्येतिहासों में सन्त शब्द व काव्य ऐतिहासिक

1॰परशुराम चतुर्वेदी-उत्तर भारत की सन्त परम्परा - पृ॰7
2॰डा॰रामकुमार वर्मा-हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - पृ॰193
3॰परशुराम चतुर्वेदी-उत्तर भारत की सन्त परम्परा - पृ॰7
4॰डा॰गणपतिचन्द्र गुप्त-हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास - पृ॰172

परम्परा से सम्बन्धित होने पर भी समानार्थवाची नहीं हैं ।

मराठी में सन्त और भक्तों के बीच कोई विभाजक रेखा नहीं है अतः मराठी साहित्य के इतिहास में ब्रह्म सत्यान्वेषी निर्गुण और सगुण सभी साधकों को सन्त कहा जाता है । पर हिन्दी साहित्य में सन्त शब्द से निर्गुणोपासक कवियों का बोध होता है तो भक्त से सगुणोपासक कवियों का, अतः मराठी के भक्ति साहित्य को हिन्दी साहित्य की भान्ति सगुण और निर्गुण धाराओं में वर्गीकृत नहीं किया गया है ।उसका प्रधान कारण यह है कि मराठी सन्तों का दृष्टिकोण हिन्दी सन्तों के दृष्टिकोण से भिन्न है । अतः मराठी सन्तों के दृष्टिकोण को समझकर हम नामदेव के सम्बन्ध में प्रचलित भ्रान्तियों के मूल कारण को ढूंढ सकेंगे ।

<u>मराठी सन्तों का दृष्टिकोण</u>

मराठी सन्तों का दृष्टिकोण भगवान के निर्गुण व सगुण रूपों को मराठी सन्तों ने "सगुण निर्गुण एकु रे गोविन्दु" और "थिजले विथुरले घृत" के रूप में देखा है । जैसे घी का ठोस व द्रव्य रूप भिन्न होने पर मूलतः घी तत्व में समानता है, दोनों रूपोंमें तत्व की अभिन्नता है, वैसे ही ब्रह्म के सगुण और निर्गुण रूप भी एक ही है । वही अद्वैत तत्व एक है ।

महाराष्ट्रीय सन्त ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं कि सगुण में निर्गुण और निर्गुण में सगुण दोनों ही हैं जैसे सोने व उससे निर्मित आभूषण में कोई मूलभूत अन्तर नहीं है । ब्रह्म के लिए सगुण निर्गुण की उपाधियों को वे कल्पित मानते हुए "सगुण निर्गुण एकु रे गोविन्दु" कह इस भेद का स्पष्ट रूपेण खंडन कर उसकी एकात्मकता प्रतिपादन करते हैं ।[1]

ज्ञानमार्गी निवृत्ति महाराज नन्द के छोरे कृष्ण पर मुग्ध हो कहते हैं

---

1. तुज सगुण म्हणों की निर्गुण रे ।
   सगुण निर्गुण एकु गोविन्दु रे ।।
   श्री सकल सन्त गाथा – अभंग 40

और जिसकी अनन्तता का छोर वेद भी नहीं पा सके वही तो नन्द के आँगन में खेल रहा है ।

नामदेव ने भी मराठी अभंगों में इसी दृष्टिकोण से सगुण निर्गुण का प्रतिपादन किया है । एक मराठी अभंग में कहते हैं कि :- जो सगुण निर्गुणातीत है वही साकार रूप में भक्तों को उपलब्ध हुआ है । जल से हिम की भान्ति ही निराकार ब्रह्म भी साकार हुआ । सुवर्ण व सिक्के के समान निर्गुण व सगुण दोनों एक ही मूलतत्व ब्रह्म हैं । पांडुरंग ही जग और जग ही पांडुरंग है ।[1] पर ब्रह्म तो द्वैताद्वैतातीत है ।[2]

मराठी सन्तों के इसी दृष्टिकोण के कारण मराठी कवि निर्गुण और सगुण के अनुसार वर्गीकृत नहीं किये गये हैं । उनके भागवत धर्म का मूल रहस्य व सार ही है कि भूत मात्र में भगवान को देखो वही भक्तियोग है । सन्त ज्ञानेश्वर की उस मराठी ओवी (छन्द) का हिन्दी रूपान्तर :- "जो जो भी प्राणिजात हैं । उन्हें भगवान मानिए यह भक्तियोग निश्चित । जानिये मेरा ।"

क्यों कि जब ब्रह्म सर्व व्यापी है भूतमात्र में सर्व व्यापक है तो वह प्रतिमा से भी पृथक कैसे रह सकता है अतः नामदेव ने भी अपने विठ्ठल को मन्दिर की प्रतिमा में देखते हुए भी सृष्टि के अणु अणु में उन्हें देखा है । नामदेव ने विठ्ठल शब्द पंढरपुर की विठ्ठल प्रतिमा व व्यापक ब्रह्म दोनों ही अर्थों में प्रयुक्त किया है । हिन्दी पदों में तो विठ्ठल शब्द प्रायः सर्वव्यापी ब्रह्म के अर्थ में प्रयुक्त है ।

- -

1. सगुण निर्गुण नाही ज्यासि आकार । तोउनि साकार तोचि ठेला ।
जळी जळगार दिसे जैसा परी । तैसा निराकारी साकार हा ।।
सुवर्ण की धन, धनकी सुवर्ण । निर्गुण सगुण यथापरी ।
पांडुरंगी अंगी सर्व व्याले जग । निवदी अंग सवांग नामा म्हणे ।।
नामदेव गाथा - अभंग 329

2. नामदेव म्हणे परब्रह्म नाम । द्वैतक्रिया कर्म नाही तेथे
नामदेव गाथा - अभंग 619

इसका कारण यही प्रतीत होता है कि विसोबा खेचर से दीक्षा प्राप्त करने के बाद उनकी भावना व्यापक हो गई थी उन्हें यहाँ और विठ्ठल के ही दर्शन होने लगे थे ।

"इभे विठ्ठलु उभे वीठलु वीठल बिनु संसार नहीं ।"

मराठी सन्तों के इसी दृष्टिकोण के कारण हमें हिन्दी और मराठी सन्तों में एक भारी अन्तर दिखाई देता है । यह अन्तर नामदेव और कबीर में स्पष्ट दृष्टिगत होता है ।

कबीर ब्रह्म के प्रतीक स्वरूप प्रतिमा से घोर वितृष्णा प्रकट करते हुए मूर्तिपूजा का खंडन करते हैं वहाँ नामदेव विठोबा को निर्गुण ब्रह्म का प्रतीक कह उसके चरणों में नतमस्तक हो[1] मूर्तिपूजा के प्रति अपने सीमित दृष्टिकोण की भूल को स्वीकार करते हैं ।

"चूक भयी IT, चूक भयीला
चुके विठ्ठल अवतार धरीला ।"[2]

सगुण निर्गुण विवेक

सगुण निर्गुण विवेक वास्तव में स्वयं सन्तों, भक्तों व साधकों ने इस भेद को स्वीकार नहीं किया मूलतः सगुण व निर्गुण में कोई अन्तर नहीं ।

निर्गुण भक्त अरूप के सहारे रूप को देखता है तभी तो कबीर कहते हैं :- "माया महाठगिनि मैं जानी" । निर्गुण भक्ति में असीम व अरूप मुख्य, सीमा व रूप गौण होते हैं इसीलिए निर्गुण भक्तों ने भी सगुण तत्वों का प्रतिपादन करते हुए ब्रह्म का वर्णन किया है । कबीर कहते हैं कि प्रहलाद जैसे अनेकों भक्तों को अनेकों बार भगवान ने उबारा, पर वह "ना दशरथ घरि अवतरि आवा, न जसोदा गोद खिलावा" कह अवतार रूप का खण्डन करते हैं ।[3]

---

1. आचार्य विनयमोहन शर्मा-साहित्य नया पुराना - पृ. 133
2. डा॰ मिश्र व मौर्य सम्पादित - स॰ना॰हि॰प॰ - पद- 134
3. कबीर ग्रन्थावली, बारह पदी रमैणी - पृ॰ 243

सगुण भक्त कवियों द्वारा मान्य भगवान् के सगुणों का समर्थन करते हैं ।

एक रूप व एक नाम से उसका संकेत नहीं दिया जा सकता अतः उसके लिए अनन्त नामों की सृष्टि की गई

"हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता ।"

देखने में ये विचार विरोधी से प्रतीत होते हैं पर उनकी दृष्टि अनन्त ईश्वर के गुणगान पर होती है

सगुण भक्त की आस्था रूप पर अधिक होती है । रूप के माध्यम से उस अरूप का बोध सगुण भक्त को होता है ।

सगुण भक्त का विश्वास है कि "साधूनां परित्राणाय विनाशाय च दुष्कृताम्" के लिए भगवान् युग युग में जन्म लेते हैं, अवतार ग्रहण करते हैं । अपने संकल्प की पूर्ति के लिए भगवान् भी सीमा का सहारा लेते हैं भक्तों के प्रेम के आग्रह से अनन्त भगवान भी सीमित हो जाता है, जीव चैतन्य सीमित है तो ब्रह्म चैतन्य असीमित है पर वही ब्रह्म लोक संग्रह की भावना से अवतार ग्रहण करता है तभी तो तुलसी कहते हैं :-

"विप्रधेनु सुर सन्त हित लीन्ह मनुज अवतार" सूरदास जी ने उस अव्यक्त को अवर्णनीय बताते हुए सगुण भक्ति को अपनाया ।

अविगत गति कछु कहत न आवै
सूर ताते लीला पद गावै

इस प्रकार सगुणोपासना में निर्गुण का विवेक रहता है पर उसका आग्रह रूप के प्रति होता है । निर्गुण भक्त का आग्रह अरूप के प्रति होता है ।

इस प्रकार दोनों में कोई मूलभूत अन्तर नहीं, केवल आस्था का अन्तर है । निर्गुणी और सगुणी सन्तों में यदि कोई भेद दिखाई देता है तो वह है भक्ति के स्थूल बाह्याचार के प्रति उपेक्षा । निर्गुणी सन्त व्रत, पूजा, अर्चन, तीर्थाटन आदि में आस्था नहीं रखते । वे ज्ञान की आंखों में ब्रह्म का साक्षात्कार करना चाहते

हैं ।[1] इन निर्गुणी सन्तों ने ज्ञान अर्थात् आत्मज्ञान के साथ साथ प्रेम को भी महत्व दिया है । ये प्रेम के ढाई आखर के सम्मुख विश्व के समस्त ज्ञान कोश को तुच्छ समझते हैं ।[2]

इस दृष्टि से नामदेव और कबीर के पदों का अध्ययन करने पर हमें यह भेद स्वीकार करना पड़ता है और उस दृष्टि से भी नामदेव निर्गुणोपासक सिद्ध होते हैं । और मराठी रचनाओं में भी सगुण का प्रतिपादन वे निर्गुण की भूमिका पर करते हैं । अत: दोनों के दार्शनिक दृष्टिकोणों में मूलत: कोई अन्तर नहीं है । क्योंकि हिन्दी में सन्त काव्य का प्रारम्भ मराठी सन्त काव्य की प्राचीन परम्परा से हुआ ।

महाराष्ट्रीय सन्त काव्य की परम्परा

महाराष्ट्रीय सन्त काव्य का आरम्भ हिन्दी सन्त काव्य परम्परा के प्रचलन के पूर्व माना जाता है ।[3] महाराष्ट्र में इस परम्परा के आदिकवि मुकुन्दराज [1127-1200 ईस्वी] माने जाते हैं । इनका पहला काव्य ग्रन्थ "विवेक सिन्धु" में ब्रह्म, जीव, माया, पंचमहाभूत, गुरु की महत्ता, सगुण, निर्गुण, तत्वमसि का प्रतिपादन मराठी में जनसाधारण की शैली में किया । मुकुन्दराज नाथपन्थी होने पर भी उनके विचारों में सन्तमत का पूर्ववर्ती आभास दिखाई देता है । इनके परवर्ती चक्रधर ने सन्त परम्परा की पृष्ठभूमि तैयार की और वारकरी सम्प्रदाय के ज्ञानेश्वरी, निवृत्तिनाथ, नामदेव आदि सन्तों ने इसकी सम्यक् प्रतिष्ठा की । ऐतिहासिक दृष्टि से सन्त ज्ञानेश्वर वारकरी सम्प्रदाय के प्रथम उन्नायक माने जाते हैं जिनके प्रभाव से निम्न स्तर के व्यक्तियों में,भक्ति की वह अग्नि जो प्रज्वलित हुई जिसने 18वीं सदी तक मराठी साहित्य पर अपना अमिट प्रभाव छोड़ा है । महाराष्ट्रीय ज्ञानकोश के आधार पर

1•आचार्य विनयमोहन शर्मा-साहित्य नया और पुराना - पृ•130
2•ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय । - क•ग्रन्थावली. पृष्ठ - 39, सा•4.
3•डा•गणपतिचन्द्र गुप्त-हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास - पृ•183

श्री निवृत्तिनाथ (सन 1195–1219) से लेकर जोगा परमानन्द तक 26 सन्तों की सूची उपलब्ध है।[1] इससे यह सिद्ध होता है कि 13 वीं शती से 18 वीं शती के अन्त तक 600 वर्षों तक यह परम्परा अबाधगति चलती रही ।

सन्त ज्ञानेश्वर के सन्तमेला या सन्त मण्डली में हमारे आलोच्य कवि सन्त नामदेव दर्जी (1270–1350 ई) के अतिरिक्त गोरा कुम्हार (1267 – 1309 ई०) सावंता माली (1250–1295 ई०) नरहरि सुनार 13 वीं शती, सेना नाई, विसोबा खेचर, चोखा मेला, बंका महार आदि सभी निम्न जाति व व्यवसाय के सन्त कवि थे इनमें से सन्त ज्ञानेश्वर, नामदेव, सेना नाई आदि ने हिन्दी में भी रचनाएं की जिनका संग्रह परवर्ती सिखधर्म के "गुरु ग्रन्थ साहब" में किया गया। यह सन्त काव्य परम्परा मराठी में विकसित होती हुई सन्त नामदेव द्वारा हिन्दी में प्रवर्तित हुई ।

हिन्दी सन्त काव्य परम्परा

हिन्दी सन्त काव्य परम्परा को डा० गणपतिचन्द्र गुप्त ने महाराष्ट्रीय सन्त काव्य परम्परा का विकसित रूप माना है । वे लिखते हैं कि "हिन्दी का सन्त मत और सन्त काव्य एकाएक उद्भूत कोई सर्वथा नई वस्तु नहीं है । यह सिद्ध साहित्य से लेकर महाराष्ट्रीय सन्त सम्प्रदाय तक की विभिन्न परिस्थितियों एवं प्रवृत्तियों के संयोग से विकसित एक दीर्घ परम्परा का ही किंचित् परिवर्तित रूप है ।" सिद्ध और नाथ पन्थ की विशेषताएं हिन्दी सन्त काव्य में महाराष्ट्रीय सन्तों के माध्यम से ही आई । इस प्रकार वे हिन्दी सन्त काव्य का प्रत्यक्ष सम्बन्ध महाराष्ट्रीय सन्त काव्य से मानते हैं ।[2]

राहुल सांकृत्यायन के मत से सिद्धों का समय 12 वीं शताब्दी का अन्त ठहरता है । वे सिद्धों और सन्तों के प्रवाह को जोड़नेवाली शृंखला नाथपन्थ की

- -

1. आचार्य विनयमोहन शर्मा – हिन्दी को मराठी सन्तों की देन – पृ० 75
2. डा० गणपतिचन्द्र गुप्त – हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास – पृ० 189

कविताओं को मानते हैं ।[1] ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर, महाराष्ट्रीय सन्त सम्प्रदाय के हिन्दी में रचना करनेवाले चक्रधर, ज्ञानेश्वर, नामदेव, मुक्ताबाई आदि सभी कवि पहले नाथपन्थी ही थे । इनमें से आलोच्य कवि नामदेव को इसे हिन्दी में प्रचलित करने का श्रेय दिया जाता है जिन्होंने उत्तर भारत में 20 वर्षों तक निवास करते हुए अपनी विराट् अनुभूति के आधार पर हिन्दी में विपुल पदों की रचना की और सन्त काव्य परम्परा की नींव डाली जिसके ऊपर सन्त साहित्य का विशाल भव्य भवन सन्त कबीर द्वारा निर्मित किया गया जिसकी भव्य आभा से अभिभूत होकर इतिहासकारों ने सन्त कबीर को प्रवर्तक माना है । यद्यपि परवर्ती सन्त साहित्य की सभी विशेषताएं सन्त नामदेव की कविता में मिलती है और सभी परवर्ती सन्तों व इतिहासकारों ने उनके महत्व को स्वीकार भी किया है ।

नामदेव का ऐतिहासिक महत्व

आ· शुक्ल द्वारा निर्गुण पंथ का प्रारम्भकर्ता[2] डा·रामकुमार वर्मा के कबीर के पूर्व उत्तर भारत में भक्ति का परिष्कृत रूप रखनेवाले[3] सन्त साहित्य के मर्मज्ञ परशुराम चतुर्वेदी की दृष्टि में वे उत्तरी भारत के सन्तों के पथ प्रदर्शक[4] कबीर साहित्य के धुरन्धर पण्डित आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी रामानन्द की तरह भक्ति को दक्षिण से उत्तर भारत में लानेवाले[5] कह स्वीकार करते हैं, पर सन्त काव्य परम्परा के प्रवर्तन का श्रेय सन्त कबीर को देते हैं । उपरोक्त निर्देशों से यह बात स्पष्ट सिद्ध होती है कि कालक्रमानुसार कबीर से पूर्ववर्ती नामदेव इतिहास की एक ऐसी महत्वपूर्ण कड़ी हैं जिसका उल्लेख किये बिना इतिहास शृंखलाबद्ध नहीं किया जा सकता । अतः इतिहासकारों ने उनका उल्लेखमात्र कर इतिहास को

- -

1·राहुल सांकृत्यायन - पुरातत्त्व निबन्धावली - पृ· 161

2·आचार्य रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ· 70

3·डा·रामकुमार वर्मा - हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - पृ· 220

4·श्री परशुराम चतुर्वेदी - उत्तरी भारत की सन्त परम्परा - पृ· 10

5·आ· हजारी प्रसाद द्विवेदी - हि·सा·भूमिका - पृ· 62

मूल्यांकन करने का प्रयास किया, पर उन्हें उचित स्थान नहीं दिया । अतः वे आलोचकों द्वारा उपेक्षित रहे । उपेक्षित से हमारा अभिप्राय हिन्दी साहित्य के अनुसन्धित्सु, आलोचकों द्वारा कबीर पर सभी दृष्टियों से विचार किया गया है उसकी तुलना में सन्त कबीर से पूर्ववर्ती नामदेव पर सन् 1970 के पूर्व कोई भी स्वतन्त्र आलोचना अप्राप्य है ।

सन्त नामदेव का साहित्यिक महत्व

उनके परवर्ती सन्त कवियों द्वारा किये गये गौरव से सिद्ध होता है । स्वयं सन्त कबीर उनके महत्व को मान्यता देते हुए कहते हैं कि भक्ति के प्रेम को उन्होंने जयदेव व नामदेव द्वारा पहचाना[1]। कबीर के समकालीन सन्त कवि रविदास ने निम्न काव्य पंक्तियों से उनका गौरव किया है ।

> नामदेव, कबीर त्रिलोचन सधना सैनु तरे
> कहि रविदास सुनहु रे सन्तो, हरिजीउ ते सभै सरे [2]

सन्त कवि पीपा ने नामदेव और कबीर की वंदना करते हुए उन दोनों के जीवन का सारसर्वस्व भक्ति को माना है ।[3] तो राजस्थान के महान् सन्त दादूदयाल[4] की वाणियों में नामदेव व कबीर के प्रति प्रशंसात्मक उद्गारों से इस बात की पुष्टि होती है कि कबीर के समकक्ष ही नामदेव का भी साहित्यिक महत्व सभी

- -

1. गुरु परसादी जैदेव नामा । भगति के प्रेम इन्है है जाना
   कबीर ग्रन्थावली – पृ० 328
2. रैदास – सन्त सुधासार – पृ० 183
3. जौ कलि नाम कबीर न होते
   तौ लोक वेद और कलियुग
   मिलि करि भगति रसातल देते ।
   सन्त पीपा –
4. नामदेव कबीर जुलाहो, जन रैदास तिरे
   दादू बेगि बार नहि लागी, हरि सो सबै सरे ।
   दादूदयाल सन्त सुधासार – पृ० 441

सन्तों को मान्य है ।

हिन्दी में सन्तकाव्य परम्परा के प्रवर्तन का श्रेय

हिन्दी में सन्तकाव्य परम्परा के प्रवर्तन का श्रेय सर्वप्रथम आचार्य विनयमोहन शर्मा द्वारा सन्त नामदेव को दिया गया । वे अपने प्रबन्ध "हिन्दी को मराठी सन्तों की देन में विभिन्न दृष्टिकोणों से विचार करते हुए तथ्यों के आधार पर सन्त नामदेव को उसका प्रवर्तक मानते हुए लिखते हैं कि - "नामदेव मे उत्तरी भारत के सन्तमत की सारी विशेषताएं विद्यमान है। इसलिए हम उन्हें उत्तर भारत में निर्गुण भक्ति मत का प्रथम प्रचारक एवं प्रवर्तक तथा कबीर आदि सन्तों का पथ प्रदर्शक मानते है आगे वे स्वीकार करते है कि कबीर के समान नामदेव की हिन्दी रचनाएं प्रचुर मात्रा मे नही मिलती परन्तु जो कुछ प्राप्य हैं उनमें उत्तर भारत की सन्त परम्परा का पूर्व आभास मिलता है और उनके परवर्ती सन्तों पर निश्चय ही उनका प्रभाव पड़ा है जिसको उन्होंने मुक्तकंठ से स्वीकार किया है । ऐसी दशा में उन्हें उत्तर भारत में निर्गुण भक्ति का प्रवर्तक मानने में कोई झिझक नही होनी चाहिए ।[1]

डा॰ गणपतिचन्द्र गुप्त आचार्य शर्मा के मत का समर्थन करते है । नामदेव और कबीर मे केवल 48 वर्षों का अन्तर है, 50-60 वर्ष का व्यवधान कोई विशेष महत्त्व नही रखता अतः नामदेव से कबीर तक इस परम्परा को अखंड सिद्ध करते हुए उन्होंने नामदेव को ही प्रवर्तक मान उन्हें हिन्दी सन्त काव्य परम्परा में प्रथम स्थान दिया है ।[2]

डा॰ भागीरथ मिश्र उन्हें आद्यप्रवर्तक मानते हुए लिखते है :-

"सन्त साहित्य रूपी गंगा की गंगोत्री सन्त नामदेव है और उस गंगोत्री को हरिद्वार का सर्वजन सुलभ तीर्थ स्थान बनानेवाले व उसे एक निश्चित दिशा देनेवाले महात्मा कबीरदास है ।[3]

- -

1॰आचार्य विनयमोहन - हिन्दी को मराठी सन्तों की देन - पृ॰ 128-129

2॰डा॰गणपतिचन्द्र गुप्त - हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास पृ॰ 196-197

3॰डा॰भागीरथ मिश्र - नामदेव दर्शन - पृ॰ 565

डा॰ ई॰ के॰ बाडकर अपने शोध प्रबन्धमें हिन्दी निर्गुण काव्य धारा का विवेचन कर नामदेव को ही प्रवर्तक सिद्ध करते हुए लिखते हैं :-

"सन्त मत का बीजारोपण नामदेव के द्वारा हुआ और सन्त नामदेव की लगाई हुई इस बेली को कबीर ने सींचा, विकसित और पुष्ट किया ।[1]

उपर्युक्त पर्यालोचन से हिन्दी सन्त-काव्य-परम्परा के प्रवर्तक होने का श्रेय महाराष्ट्रीय सन्त नामदेव को ही दिया जा सकता है ।

नामदेव मूलत: मराठी के कवि हैं अत: मराठी सन्त काव्य का प्रभाव उनकी विचारधारा पर पड़ना अनिवार्य है । और हिन्दी सन्त काव्य धारा की पृष्ठभूमि को समझने के लिए मराठी व हिन्दी संत काव्य के साम्य व अन्तर पर एक विहंगम दृष्टि डालना उचित होगा, क्योंकि गत विवेचन से यह स्पष्ट है कि मराठी की सन्त परम्परा से हिन्दी की सन्त परम्परा का अविच्छेद्य सम्बन्ध है, पर दोनों की अपनी विशेषताएं हैं । इस दृष्टि से हिन्दी और मराठी के संत काव्य पर दृष्टि डालने पर निम्न प्रवृत्तियों में प्रधान रूपेण अद्भुत साम्य दृष्टिगोचर होता है ।

मराठी और हिन्दी सन्त काव्य में साम्य

अद्वैत और भक्ति में समन्वय - सभी सन्तों और भक्तों ने अद्वैत की सच्ची अनुभूति भक्ति द्वारा ही मानी है । यही अभेद भक्ति है । सन्त ज्ञानेश्वर अभेद भक्ति का स्वरूप बड़े सुन्दर दृष्टान्तद्वारा समझाते हैं --

जैसे एक ही चट्टान में गुफा, मन्दिर, मूर्ति और भक्त के आकार खुदवाये जाते हैं वैसे ही इसे अभेदभक्ति का व्यवहार समझना चाहिए । शिव और

- -

1. हिन्दी निर्गुण काव्य का आरम्भ और नामदेव की हिन्दी कविता - पृ॰ 332

चिदात्मक देव को अभिन्न मानकर भक्ति करनी चाहिए ।[1] यही नहीं अपितु भक्त और भगवान् का स्वरूप दीप और उसकी प्रभा की भांति अभिन्न होता है ।[2] परवर्ती मराठी कवि सन्त एकनाथ स्पष्ट लिखते हैं कि "अद्वैतानुभव के बिना सही भक्ति ही सम्भव नहीं । अभेदभाव से भक्ति करनेवाले को श्रेष्ठ भक्त माना है ।

सन्त नामदेव ने "नामा तो केशव, केशव तो नामा"[3] तथा हिन्दी पदों में राम सो नामा, नाम सो रामा"[4] कह उसी अभिन्नता को प्रतिपादित किया है । सन्त कबीर ने उस अद्वैत और भक्ति के समन्वय को बड़े सरल शब्दों में व्यक्त किया है --

> "तूं तूं करता तूं भया मुझमें रही न हूं
> वारी तेरे नांव की जित देखूं तित तूं ।।[5]

इस प्रकार अद्वैत और भक्ति के समन्वय की अभिव्यक्ति दोनों ही भाषाओं के कवियों में समान रूप से उपलब्ध होती है ।

सगुण और निर्गुण का समन्वय

सन्तों का उपास्य निर्गुण ब्रह्म त्रिगुणातीत, अलख, अगोचर, अव्यक्त, द्वैताद्वैतविलक्षण होने पर भी भक्त की दृष्टि से भक्तवत्सल,शरणागत रक्षक रूप में सगुण है । उभय भाषा के काव्य में सगुण व निर्गुण का समन्वय किया

---

1. देव देऊळ परिवारु । कीजे कोरुनि डोंगरु
   तैसा भक्तीचा वेव्हारु । का न व्हावा ।
   हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास - (चतुर्थ भाग) पृ॰ 8
2. मी तो भक्तरूप, भक्त माझे स्वरूप । प्रभा आणि दीप जया परी ।
   नामदेव गाथा - अभंग - 910
3. नामदेव गाथा - आत्मचरित्र - अभंग - 1242
4. सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली - पद- 7
5. कबीर ग्रन्थावली - सुमिरण को अंग - साखी - 9

गया है । मराठी सन्तों की भूमिका बड़ी स्पष्ट है ।

"सगुण निर्गुण एकुरे गोविन्दु"

की उद्घोषणा कर मराठी सन्त ज्ञानेश्वर[1] व अन्य सभी सन्त निर्गुण निर्गुण की अभिन्नता को प्रतिपादित करते हैं तो हिन्दी सन्त कबीर :-

"मूंण में निरगुण, निरगुण में मूंण है ।"[2]

कह उसी बात का समर्थन करते हैं । इस प्रकार दोनों ही भाषाओं के काव्य में इस समन्वय भावना की अभिव्यक्ति में साम्य लक्षित होता है ।

3. माधुर्यभाव की अनुभूति

यह हिन्दी और मराठी सन्त काव्य की तीसरी समान प्रवृत्ति मानी जा सकती है । सभी सन्तों, भक्तों ने ब्रह्म और जीव के मध्य पति-पत्नी के सम्बन्ध की मधुरभाव की कल्पना कर अपनी माधुर्यभावपूर्ण अनुभूतियों की व्यंजना की है । अपने आराध्यदेव राम को कभी भरतार, बान्धा, पति आदि विशेषणों से सम्बोधित किया है ।[3] मराठी की अपेक्षा हिन्दी सन्त काव्य में इस भाव की प्रधानता दिखाई देती है ।

4. गुरु महिमा गान

भक्ति में गुरु की महत्ता सर्वमान्य है जिस समान प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति हिन्दी और मराठी के सन्त काव्य में हुई है । वे एकमात्र तारक

---

1. सगुणी निर्गुण, निर्गुणी सगुण ।
   दोन्ही भिन्नपण नसे मुळी ।
   सकल सन्त गाथा (ओवी चे अभंग) ज्ञानेश्वर अभंग 2258 पृ. 316
2. कबीर ग्रंथावली - पद- 180
3. मैं (अ) मैं बउरी मेरा राम भरतार । स.ना.हि.प. = पद- 214
   (आ) हरि मेरा पीव मैं हरि बहुरिया - कबीर ग्रं. पद-117
   (इ) हम घर आये हो राजाराम भरतार - कबीर ग्रं. पद- ।

गुरु को ही मानते हैं ।[1] कहीं-कहीं गुरु को गोविन्द से बड़ा माना है ।[2] सिक्ख धर्म का जन्म भी गुरुवाणियों द्वारा हुआ ।

5. नाथपन्थी योग साधना की स्वीकृति

द्वयभाषा के कवियों पर नाथपन्थी योग का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। वारकरी सन्त सम्प्रदाय की गुरु परम्परा नाथ सम्प्रदाय से मानी जाती है । यह तथ्य है कि महाराष्ट्र का नाथ पन्थ ही वारकरी सम्प्रदाय में विलीन हो गया ।[3] हिन्दी सन्त साहित्य नाथपन्थ की श्रृंखला के रूप में विकसित हुआ । अतः हिन्दी और मराठी के सन्त काव्य में योग साधना को स्वीकृति देते हुए योग परक शब्दावली, उलटबासी और योग-सम्बन्धी रूपकों का प्रचुर प्रयोग मिलता है । योग की पारिभाषिक शब्दावली इडा-पिंगला, सुषुम्ना, उन्मनी, अनाहतनाद, शून्य, सहज आदि का प्रयोग द्वय भाषाओं के काव्य में समान अर्थों में ही व्यवहृत किये गये हैं ।

6. भक्ति के आधार पर मानवतावाद की स्थापना

हिन्दी मराठी सन्तों ने जातिपांति का विरोध, कर्मकांड व बाह्याडम्बरों का खण्डन कर उन्होंने सदाचरण पर बल दिया । आचरण को

---

1. [अ] सद्गुरु वाचूनी संसारी तारक ।
नव्हेचि निश्चंक आन कोणी ।
सकल सन्त गाथा [ओवीचे अभंग] ज्ञानेश्वर - पृ. 523
[आ] गुरु चे नाम घेता वाचे । केवल्यमुक्ति तेथे नाचे ।
- वही - एकनाथ महाराज - पृ. 527
2. कबीर ग्रन्थावली - गुरुदेव को अंग - सा. 3
3. आ. विनयमोहन शर्मा - हिन्दी को मराठी सन्तों की देन - पृ. 64,65

ही धर्म मानने पर बल दिया । कथनी और करनी, आचरण और व्यवहार की एकता पर जोर देते हुए मानवतावादी भावनाओं को समान रूप से अभिव्यक्त किया ।

हिन्दी और मराठी के सन्त काव्य में वैषम्य की दृष्टि से विचार करने पर निम्न प्रवृत्तियों में भिन्न दृष्टिकोण दिखाई देता है ।

1• लीला वर्णन

मराठी सन्तों की यह विशेषता रही है कि उन्होंने निर्गुण और सगुण का समन्वय करते हुए भी ब्रह्म के अवतार रूप को भी मान्यता दी है अतः उनके काव्य में लीला वर्णन हुआ है । नामदेव इसके अपवाद नहीं है पर हिन्दी सन्त कवियों ने सगुण भक्ति तत्व नाम को प्रधानता देते हुए भी लीला वर्णन नहीं किया, कहीं-कहीं अवतारत्व जटायु, प्रह्लाद आदि पौराणिक कथा के द्वारा संकेत मात्र दिया है । प्रबन्ध की विधा को ज्ञान की अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में व्यवहृत न करने के कारण इन सन्तों ने लीला विस्तार को छोड़ दिया ।

2• खण्डन की मृदुता

मराठी सन्तों की समन्वयवादिता के कारण उसमें खण्डन की मृदुता है, उनमें हिन्दी सन्तों की खण्डन की तीक्ष्णता नहीं पाई जाती । वैसे सभी भक्तों व सन्तों ने कर्मकांड व बाह्याडम्बरों का खंडन तीव्र शब्दों में किया । अपवादरूप मराठी सन्त तुकाराम की शैली हिन्दी कवियों की भांति खंडनात्मक प्रतीत होती है । हिन्दी की सी व्यंगप्रियता मराठी काव्य में नहीं । जिसे हम खण्डन की मृदुता का परिणाम मानते हैं ।

3· कर्मयोग की प्रधानता

मराठी सन्तों ने उपनिषदों के शुद्ध विमल तत्त्व ज्ञान और गीता के निष्काम कर्मयोग को भक्ति से जोड़ा. उनकी धारणा यही रही है कि "कर्माशिवाय मुक्ती नाही" अर्थात् कर्म के बिना मुक्ति सम्भव नहीं । यद्यपि हिन्दी सन्तों ने भी निष्कामयोग को मान्यता प्रदान की है, पर कहीं-कहीं हिन्दी सन्तों द्वारा प्रतिपादित कर्मयोग भजन-पूजन आदि को प्रधानता देता हुआ प्रतीत होता है ।[1] उनके काव्य में ज्ञान को प्रधानता प्राप्त हुयी है । वैसे सभी सन्तों ने अपना आजीविका का धन्धा करते हुए श्रम साधना को ईश्वरार्पण कर ब्राह्म कर्म बना लिया था ।

4· मुक्ति से भक्ति श्रेष्ठ

मराठी सन्त साहित्य में मुक्ति की अपेक्षा भक्ति को श्रेष्ठ माना है अतः मराठी सन्तों ने भक्ति को ही जीवन का लक्ष्य मानते हुए मुक्ति के प्रति उदासीनता प्रकट की है । नामदेव "मज देई सेवा जन्मोजन्मी" कह जन्म जन्मांतर तक सेवा करने की आकांक्षा व्यक्त करते है ।[2] अन्य एक अभंग में उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि :-

"मुक्तपण आम्हा नको देवराया ।"[3]

अर्थात् उन्हें मुक्ति की अपेक्षा भक्ति प्रिय है । नामदेव के हिन्दी पदों में इसी भाव की अभिव्यक्ति हुई है । वे भक्ति की प्राप्ति पर मुक्ति

1· तनना बुनना तज्या कबीर, रामनाम लिख लिया शरीर ।
कबीर ग्रन्थावली - पद- 21, पृ· 95

2· ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय, ध्याता ध्यान ध्येय, नाथिले उपाय नाही तुज ।
नामा म्हणे नकोंचि देवा । मज देई सेवा जन्मोजन्मी ।
नामदेव गाथा - [म·ज्ञा·प्र·] मराठी अभंग 1768

3· वही - मराठी अभंग - 1511

के त्याग की बात कहते हैं ।[1] वे वेदों को प्रमाण मानते हुए भक्ति के बिना मोक्ष सम्भव नहीं, कहते हैं ।[2]

इसके विपरीत हिन्दी सन्तों ने मुक्ति को ही लक्ष्य माना है । सन्त कबीर के विचार में :-

'भक्ति नसेनी मुक्ति की,
सन्त चढे सब धाय ।।[3]

अर्थात् भक्ति मुक्ति का सोपान है ।[4] सन्तों की मुक्ति की धारणा मराठी और हिन्दी में अन्तर दिखाई देता है ।

5. वात्सल्य भक्ति-भावना

इस दृष्टि से भी मराठी और हिन्दी सन्त काव्य में अन्तर दृष्टिगोचार होता है ।

वारकरी सम्प्रदाय के मराठी सन्तों की भक्ति पूर्ण-रूपेण वात्सल्यभाव पर आधारित है । तत्कालीन महानुभाव पन्थी मराठी सन्तों की कृष्णभक्ति माधुर्यभाव पर आधारित थी पर सन्त ज्ञानेश्वर, नामदेव आदि वारकरी सन्तों ने इस भावना का उदात्तीकरण कर वात्सल्य भक्ति पर जोर दिया । अत: सभी मराठी सन्तों ने विठ्ठल को 'माउली' अर्थात्

---

1. भगति आपिला मुकति त्यागिला ।
मिश्र व मौर्य - सं० स० ना० हि० प० = पद-69
2. भक्तीवीण मोक्ष नव्हे हा सिद्धान्त । वेद बोले हात उभारोनि
नामदेव गाथा - महाराष्ट्र शासन प्रत - मराठी अभंग-1925
3. कबीर साखी संग्रह भाग I, 2 - 33 : 8

माता के रूप में देखा है और अपने प्रेम की अभिव्यक्ति की है ।[1] इस प्रकार उनकी प्रेमभक्ति वात्सल्य रस से सिक्त है ।

हिन्दी सन्तों ने भी कहीं-कहीं "हरि जननी मैं बालक तेरा" कह इस भाव की अभिव्यक्ति की है[2] पर उनकी भावानुभूतियों में दास्यभाव व माधुर्यभाव की प्रधानता है । नामदेव के हिन्दी पदों में वात्सल्यभाव प्रधान है ।[3] साथ ही दास्य भावना भी है । इस प्रसंग में यह उल्लेख करना आवश्यक होगा कि मराठी में सगुण और निर्गुण का भेद नहीं है अतः मराठी साहित्य के भक्त कवियों का हिन्दी भाँति सगुण, निर्गुण या देवता विशिष्ट राम भक्ति और कृष्ण भक्ति अथवा ज्ञान तथा प्रेम विषयक वर्गीकरण नहीं है ।

नामदेव सम्बन्धी भ्रान्तियों का निराकरण दोनों भाषाओं की विशेषताओं को लक्ष्य में रखकर ही किया जा सकेगा । उनके साहित्य का एकांगी अध्ययन होने से ही अनेक भ्रान्तियाँ उद्भूत हुई हैं ।

---

1. — नामदेव

   (अ) विठ्ठल माउली कृपेचि साकली । आठविता घाली प्रेम पान्हा ।
   (आ) तू माझी माउली मी वो तुझा तान्हा ।
   नामदेव गाथा - 1480
   (इ) एकनाथ - देव एकनाथांचा बळता
   (ई) विठ्ठ माझा लेकुरवाला - जनाबाईचे अभंग
   (उ) तुकाराम - विठ्ठल माझी माय ।
   तुकाराम गाथा, अभंग, 223।

2. कबीर ग्रन्थावली - पद, 111

3. सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, देखिये - पद, 59,24,35 आदि

इस चिन्ता दर्शन के प्रकाश में आगामी अध्यायों में नामदेव और कबीर की दार्शनिक विचारधारा का तुलनात्मक अध्ययन करने से पूर्व हमें उनके काल पर विचार करना होगा और उन युगीन परिस्थितियों का पर्यवेक्षण करना होगा, जिसने उनकी विचारधारा को प्रभावित किया और उन्होंने लेखनी उठाई । अपने युगान्तरकारी विचारों से धर्म और संस्कृति का पुनर्जागरण किया ।

~ ... ~